११७८

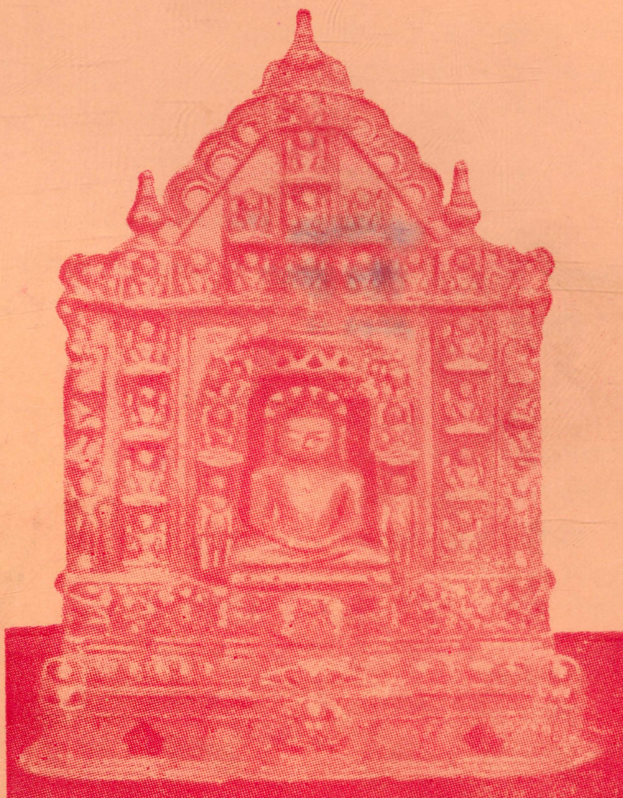

तित्थयर

वर्ष २० : अंक १ मई १९९६

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २० : अंक १
मई १९९६

□

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०००७

□

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन
कलकत्ता-७

सूची

जैन प्रतिमाविज्ञान के आधारग्रन्थ ३
चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास १३
महाराजा श्रेणिक २२
संकलन ३१
जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या ३२

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि (१९५६) के ८ नम्बर धारा के अनुसार निवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	लता बोथरा (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	लता बोथरा (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	लता बोथरा
ठिकाना :	पी०-२५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, लता बोथरा, घोषणा करती हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है।

लता बोथरा

१५-५-९६

जैन प्रतिमाविज्ञान के आधारग्रन्थ

(बालचन्द्र जैन)

अर्हत्, सिद्ध, साधु और केवली-प्रज्ञप्त धर्म, इन चार को जैन परम्परा में मंगल और लोकोत्तम माना गया है। साधु तीन प्रकार के होते हैं, १. आचार्य, २. उपाध्याय और ३. सर्व (साधारण) साधु। उसी प्रकार केवली भगवान के उपदेश को जिनवाणी या श्रुत भी कहा जाता हैं। उपर्युक्त पञ्च परमेष्ठियों और श्रुत देवता की पूजा करने का विधान प्राचीन जैन ग्रन्थों में मिलता है।[१] किन्हीं आचार्यों ने पूजा को वैयावृत्त्य का अंग माना है, जैसे समन्तभद्र ने रत्नकरंड श्रावकाचार में, और किन्हीं ने इसे सामयिक शिक्षाव्रत में सम्मिलित किया है, जैसे सोमदेवसूरि ने यशस्तिलक चम्पू में। जिनसेन आचार्य के आदिपुराण में पूजा, श्रावक के निरपेक्ष कर्म के रूप में अनुशंसित है।

पूजा के छह प्रकार बताये गये हैं, १. नाम पूजा, २. स्थापना पूजा, ३. द्रव्यपूजा, ४. क्षेत्रपूजा, ५. काल पूजा और ६. भावपूजा।[२] इनमें से स्थापना के दो हैं, सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। प्रतिष्ठेय की तदाकार सांगोपांग प्रतिमा बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करना सद्भाव स्थापना है और शिला, पूर्णकुम्भ, अक्षत, रत्न, पुष्प आसन आदि प्रतिष्ठेय से भिन्न आकार की वस्तुओं में प्रतिष्ठेय का न्यास करना असद्भाव स्थापना है।[३] असद्भाव स्थापना पूजा का जैन ग्रन्थकारों ने अक्सर निषेध किया है क्योंकि वर्तमान काल में लोग कुलिंग मति से मोहित होते हैं, और वे असद्भाव स्थापना से अन्यथा कल्पना भी कर सकते हैं।[४] वसुनन्दि ने कृत्रिम और अकृत्रिम प्रतिमाओं की पूजा को ही स्थापना पूजा कहा है।[५]

---

१. जिनसिद्धसूरिपाठय साहूणं जं सुयस्स विहवेण।
कीरइ विविहा पूजा वियाण तं पूजणविहाणं ॥

वसुनन्दिश्रावकाचार, ३८०।

२. वही, ३८१।

३. भट्टाकलंककृत प्रतिष्ठाकल्प।

४. वसुनन्दि श्रावकाचार, ३८५; आशाधर कृत प्रतिष्ठासारोद्धार, ६/६३।

५. एवं चिरंतमाणं कट्टिमाकट्टिमाण पडिमाणं।
जं कीरइ बहुमाणं ठवणापुज्जं हि तं जाण ॥

वसुनन्दि श्रावकाचार, ४४६।

प्राणियों के अभ्यंतर मल को गलाकर दूर करने वाला और आनन्ददाता होने के कारण मंगल पूजनीय है। पूजा के समान मंगल के भी छह प्रकार जैन ग्रन्थकारों ने बताये हैं। वे ये हैं, १. नाम मंगल, २, स्थापना मंगल, ३, द्रव्य-मंगल, ४. क्षेत्र मंगल, ५. काल मंगल और ६. भाव मंगल।[१] कृत्रिम और अकृत्रिम जिन बिम्बों को स्थापना मंगल माना गया है।[२] प्रवचन सारोद्धार और पद्मानन्द महाकाव्य में जिनेन्द्र की प्रतिमाओं को स्थापना जिन या स्थापना अर्हत् की संज्ञा दी गई है।[३] जयसेन के अनुसार, जिनबिम्ब का निर्माण कराना मंगल है।[४] भाग्यवान् गृहस्थों के लिये अपने (न्यायोपात्त) धन को सार्थक बनाने हेतु चैत्य और चैत्यालय निर्माण के बिना कोई अन्य उपाय नहीं है।[५]

जिन प्रतिमा के दर्शन कर चिदानन्द जिन का स्मरण होता है। अतएव जिन बिम्ब का निर्माण कराया जाता है। बिम्ब में जिन भगवान् और उनके गुणों की प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की जाती है। जैन मान्यता है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर बहत्तर जिन मन्दिरों का निर्माण करवा कर उनमें जिन प्रतिमाओं की स्थापना कराई थी और तब से जैन प्रतिमाओं की स्थापनाविधि की परम्परा चली।[६]

स्थापना विधि या प्रतिष्ठाविधि का विस्तार से अथवा संक्षिप्त वर्णन करने वाले पचासों ग्रन्थ जैन साहित्य में उपलब्ध हैं। यद्यपि वे सभी मध्यकाल की रचनाएँ हैं, पर ऐसा नहीं है कि उन ग्रंथों की रचना से पूर्व जैन प्रतिमाओं का निर्माण नहीं होता था। अति प्राचीन काल से जैन प्रतिमाओं का निर्माण और उनकी स्थापना होती रही है, इस तथ्य की पुष्टि निश्शंक रूपेण पुरातत्त्वीय प्रमाणों और प्राचीन जैन साहित्य के उल्लेखों से होती है। आवश्यक चूर्णि आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवनकाल में, उनके दीक्षा लेने से पूर्व, उनकी चन्दनकाष्ठ की प्रतिमा निर्मित की गई थी।[७] हाथी गुफा प्रशस्ति में नन्दराज द्वारा कलिंग की

---

१. तिलोयपण्णत्ती, १/१८।

२. वही, १/२०।

३. प्रवचनसारोद्धार, द्वार ४२; पद्मानन्द महाकाव्य, १/३।

४. जयसेन कृत प्रतिष्ठापाठ, ७१५।

५. वहीं, २२।

६. वही, ६२, ६३।

७. उमाकांत परमानन्द शाह : स्टडीज इन जैन आर्ट पृ० ४।

जिन प्रतिमा मगध ले जाये जाने का उल्लेख है। कुछ विद्वान हड़प्पा की कबन्ध प्रतिमा को जैन प्रतिमाओं का आद्यरूप स्वीकार करते हैं। लोहिनीपुर से प्राप्त और वर्तमान में पटना संग्रहालय में प्रदर्शित जिन प्रतिमाएँ तथा खण्डगिरि (उड़ीसा) और मथुरा में उपलब्ध विपुल शिल्प, प्रतिमाएँ और आयागपट्ट आदि जैन प्रतिमा निर्माण के प्राचीनतम नमूने हैं। कंकाली टीले से प्राप्त कलाकृतियों में विभिन्न जिन प्रतिमाओं के अतिरिक्त स्तूप, चैत्यवृक्ष, ध्वजस्तम्भ धर्मचक्र और अष्टमंगलद्रव्य आदि का भी रूपांकन मिला है। देवी सरस्वती और नैगमेष की प्राचीन प्रतिमाएँ भी मथुरा में प्राप्त हुई है। प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय की पार्श्वनाथ प्रतिमा लगभग इक्कीस सौ वर्ष प्राचीन आंकी गई है।

उपलब्ध जैन आगमों के पूर्ववर्ती विद्यानुवाद नामक दसवें और क्रिया-विशाल नामक तेरहवें पूर्व में शिल्प और प्रतिष्ठा सम्बन्धी विवेचन का होना बताया जाता है पर वे ग्रन्थ विछिन्न हो गये हैं। सूत्रकृतांग, समवायांग कल्पसूत्र आदि में जैन प्रतिमाओं के सम्बन्ध में कुछ आद्य—सूचनाएँ मिलती हैं। समवायांग में ५४ महापुरुषों के विवरण हैं। पिछली परम्परा में इन महापुरुषों या शलाकापुरुषों की संख्या ६३ मानी गयी है किन्तु समवायांग की सूची में ९ प्रतिनारायणों की गणना नहीं किये जाने के कारण उनकी संख्या ५४ ही है। शलाका पुरुषों में सर्वाधिक श्रेष्ठ और पूजनीय २४ तीर्थंकरों को माना गया है। तीर्थंकर जैन प्रतिमा विधान के मुख्य विषय हैं। मध्यकालीन जैन साहित्य में तीर्थंकरों के चरितग्रंथों में उनके शासन से सम्बन्धित देवताओं के रूपों का भी वर्णन मिलता है।

हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, शीलांकाचार्य का प्राकृत भाषा में रचित चउपन्नमहापुरिसचरित, पुष्पदन्त का अपभ्रन्श भाषा का तिसट्ठिमहापुरिसालंकार, आशाधर का संस्कृत भाषा में त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र और चामुण्ड-राय का कन्नड़ भाषा का त्रिषष्टिलक्षण महापुराण, ये सभी सुप्रसिद्ध चरितग्रंथ हैं। वर्द्धमानसूरि के आदिणाहचरिउ, विमलसूरि के पउमचरिउ, रविषेणाचार्य के पद्मचरित, जिनसेनाचार्य के हरिवंशपुराण और महापुराण, अमरचन्द्र सूरि कृत पद्मानन्द महाकाव्य या चतुर्विंशति जिनेन्द्र चरित, गुणविजय सूरि कृत नेमिनाथ चरित्र, भवदेवसूरि कृत पार्श्वनाथ चरित्र तथा अन्य पुराणों और चरित्रकाव्यों में विभिन्न तीर्थंकरों और उनके समकालीन महापुरुषों का विवरण दिया गया है और उसके साथ प्रतिमा पूजा सम्बन्धी जानकारी भी दी गयी है।

प्रथमानुयोग के पुराण और चरितग्रन्थों के अलावा करणानुयोग साहित्य के ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न द्वीप, क्षेत्र, पर्वत आदि स्थानों में स्थित जिनालयों और जिनबिम्बों का वर्णन है। उन्हीं स्थानों में निवास करने वाले चतुर्निकाय देवों के सम्बन्ध में भी करणानुयोग साहित्य में विस्तार से जानकारी मिलती है। उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र को दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में मान्यता प्राप्त है। इस सूत्रग्रंथ के तृतीय और चतुर्थ अध्याय में अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का वर्णन है। पद्मनन्दि के जंबूदीपपण्णत्तिसंगहो, यतिवृषभ के तिलोयपण्णत्ति, नेमिचन्द्र के त्रिलोकसार तथा जंबू द्वीपप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपसमास, क्षेत्रसमास, संग्रहणी आदि की विषयभूत सामग्री से भी जैन प्रतिमा—विज्ञान के विभिन्न अंगों का प्रामाणिक ज्ञान होता है।

तीर्थंकरों और सरस्वती; चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती आदि देवियों के स्तुतिपरक स्तोत्र, आचार्यों और पण्डितों द्वारा रचे गये थे। यह स्तोत्र-साहित्य जैन प्रतिमाशास्त्र के अध्ययन के लिये भी मूल्यवान् है। आचार्य सामन्तभद्रका स्वयंभूस्तोत्र इस विषय की प्राचीनतर कृति है। पांचवीं-छठी शताब्दी में मानतुंग ने भक्तामर स्तोत्र और कुमुदचन्द्र ने कल्याणमन्दिर स्तोत्र की रचना की। इसमें क्रमश: आदिनाथ और पार्श्वनाथ की स्तुति है। दोनों स्तोत्रों का जैन समाज के दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में प्रचार है। धनंजय कवि ने सातवीं शताब्दी में बिषापहार स्तोत्र की, और वादिराज ने ग्यारहवीं शताब्दी में एकीभाव स्तोत्र की रचना की थी। जिनसहस्रनाम स्तोत्रों में भगवान् जिनेन्द्र देव को ब्रह्मा, विष्णु आदि नामों से भी स्मरण किया गया है। सिद्धसेन दिवाकर के जिनसहस्रनाम स्तोत्र का उल्लेख मिलता है। नौवीं शताब्दी ईस्वी में आचार्य जिनसेन ने, तेरहवीं शताब्दी में आशाधर पण्डित ने, सोलहवीं शताब्दी में देवविजयगणि ने और सत्रहवीं शताब्दी में विनयविजय उपाध्याय ने जिनसहस्रनाम स्तोत्रों की रचना की थी। बप्पभट्टि, शोभनमुनि और मेरुविजय की स्तुतिचतुर्विंशतिकाएँ प्रसिद्ध हैं। इन स्तोत्रों और स्तुतियों में जिन भगवान् के बिम्ब का शाब्दिक प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

अनेक आचार्यों और पण्डितों ने सरस्वती, चक्रेश्वरी अम्बिका जैसी देवियों के स्तुतिपरक स्तोत्रों की भी रचना की थी। उदाहरण के लिये, आशाधर पण्डित रचित सरस्वती स्तुति, जिनप्रभसूरि कृत शारदास्तवन, साध्वी शिवार्या द्वारा रचित पठितसिद्धसारस्वतस्तवन, जिनदत्तसूरि कृत अम्बिका स्तुति, और महामात्य वास्तुपाल विरचित अम्बिकास्तवन आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। इन स्तुतियों में उन देवियों के वाहन, आयुध, रूप आदि का वर्णन किया गया है।

तांत्रिक प्रभाव के कारण जैनों ने भी तरह-तरह के यंत्र, मंत्र, तंत्र, चक्र आदि की कल्पना की। सिद्धान्त रूप से तन्त्रोपेक्षी होने के बावजूद भी समय की मांग का आदर करने के लिये जैन आचार्यों को भी तांत्रिक ग्रन्थों और कल्पों की रचना करनी पड़ी थी। यह स्थिति मुख्यतः नौवीं-दसवीं शताब्दी के साथ आयी। उस प्रवाह में हेलाचार्य, इन्द्रनन्दि और मल्लिषेण जैसे दिग्गजों ने तांत्रिक देवियों की साधना की और लौकिक कार्यसिद्धि प्राप्त की। हेलाचार्य ने ज्वालिनी कल्प की रचना की थी। उल्लेख मिलता है कि उन्होंने स्वयं ज्वालिनी देवी के आदेश से वह सम्पन्न की थी। हेलाचार्य द्रविड संघ के गणाधीश थे। दक्षिण देश के हेम नामक ग्राम में किसी ब्रह्मराक्षस ने उनकी कमलश्री नामक शिष्या को ग्रसित कर लिया। उस ब्रह्मराक्षस से शिष्या की मुक्ति के लिये हेलाचार्य ने ग्राम के निकटवर्ती नीलगिरि शिखर पर बह्नि देवी को सिद्ध किया और ज्वालिनी मंत्र उपलब्ध किया। परम्परागत रूप से वही मन्त्र गुणनन्दि के शिष्य इन्द्रनन्दि को मिला किन्तु उन्होंने उस कठिन मन्त्र को आर्या—गीता छंदों में रचकर सरलीकृत किया। इन्द्रनन्दि के ज्वालिनी कल्प कीप्रतियां उत्तर और दक्षिण भारत के शास्त्र-भण्डारों में उपलब्ध हैं। उनमें दिये गये विवरण से विदित होता है कि ५०० श्लोक संख्या वाले इस कल्प की रचना कृष्णराज के राज्यकाल में मान्यखेट कटक में शक सम्वत् ८६१ की अक्षय तृतीया को सम्पूर्ण हुयी थी। इन्द्रनन्दि द्वारा रचित पद्मावती पूजा की प्रतियां भी उपलब्ध हुई हैं। उनके शिष्य वासवनन्दि की कृतियों का भी उल्लेख मिला है।

मल्लिषेण श्रीषेण के पुत्र और आचार्य जिनसेन के अग्र शिष्य थे। उनके सुप्रसिद्ध मन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थ भैरवपद्मावतीकल्प का दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में प्रचार रहा है। उस ग्रन्थ में ४०० श्लोक हैं। ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के इस तांत्रिक विद्वान् की उपाधि उभयभाषाकवि शेखर थी। उनके द्वारा रचित विद्यानुवाद, कामचाण्डालिनीकल्प, यक्षिणीकल्प और ज्वालिनी कल्प की प्रतियां विभिन्न शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित हैं। सागरचन्द्र सूरि के मन्त्राधिराजकल्प में यक्ष-यक्षियों तथा अन्य देवताओं की आराधना की गई है। बप्पभट्टि, विजयकीर्ति और उनके शिष्य मलयकीर्ति के सरस्वतीकल्प, भट्टारक अरिष्टनेमि का श्रीदेवीकल्प, भट्टारक शुभचन्द्र का अम्बिकाकल्प, यशोभद्र उपाध्याय के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि का अद्भुतपद्मावतीकल्प, ये सभी तांत्रिक प्रभावयुक्त हैं। इनमें देवियों के वर्ण, वाहन, आयुध आदि का विवरण उपलब्ध होने से वे जैनप्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन के लिये उपयोगी हैं। लोकानुसरण करते हुये जैन आचार्यों ने ६४ योगिनियों और ९६ क्षेत्रपालों की स्तुतियां और उनकी पूजाविधि सम्बन्धी कृतियों की भी रचनाएँ की थी।

श्रावकाचार युग में श्रावकाचार ग्रन्थों, संहिताओं और प्रतिष्ठापाठों की रचनाएँ हुयीं। इन्द्रनन्दि और एकसंधि भट्टारक की जिनसंहिताओं की प्रतियां उत्तर भारत में आरा, दक्षिण में मूडबिद्री और पश्चिम में राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध हुई हैं। उपासकाध्ययन नामक श्रावकाचार ग्रन्थ का उल्लेख अनेक कृतिकारों ने यथास्थान किया है। पूज्यपाद द्वारा रचित उपासकाध्ययन का भी उल्लेख मिलता है। सोमदेवसूरि के यशस्तिलक चम्पू के एक भाग का तो नाम ही उपासकाध्ययन है। वसुनन्दि ने उपासकाध्ययन का उल्लेख किया है पर उनका तात्पर्य किस विशिष्ट कृति से है यह ज्ञात नहीं हो सका। स्वयं वसुनन्दि ने भी श्रावकाचार विषयक स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना की थी। चामुण्डराय ने अपने चारित्रसार में 'उक्तं च उपासकाध्ययने' लिखकर एक श्लोक उद्धृत किया है किन्तु वह श्लोक किसी उपलब्ध ग्रन्थ में मूलतः नहीं मिला है।

प्रतिष्ठाग्रन्थों में से जयसेन या वसुविन्दु कृत प्रतिष्ठापाठ में शासन देवताओं और यक्षों की पूजा का विधान नहीं मिलता। इस प्रतिष्ठापाठ की प्रकाशित प्रति में जयसेन कुंदकुंद आचार्य के अग्र शिष्य बताये गये हैं। ग्रन्थ निर्माण का उद्देश्य बताते हुए सूचित किया गया है कि कोंकण देश में रत्नगिरि शिखर पर लालाट्ट राजा ने दीर्घ चैत्य का निर्माण कराया था। उस कार्य के निमित्त गुरु की आज्ञा प्राप्तकर, जयसेन ने दो दिनों में ही प्रतिष्ठापाठ की रचना की।[१] विक्रम संवत् १०५५ में रचित धर्मरत्नाकर के कर्ता का नाम जयसेन था। किन्तु यह कहना कठिन है कि धर्मरत्नाकर के रचयिता जयसेन और वसुविन्दु अपर नाम वाले जयसेन अभिन्न है अथवा नहीं।

प्रतिष्ठासारसंग्रह के रचयिता वसुनन्दि के श्रावकाचार का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। वे आशाधर पंडित और अय्यपार्य से पूर्ववर्ती थे क्योंकि इन दोनों ने ही अपने-अपने ग्रन्थों में वसुनन्दि के मत का उल्लेख किया है। प्रतिष्ठासारसंग्रह की रचना के लिये वसुनन्दि ने चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति के साथ महापुराण से भी सार ग्रहण किया था। आशाधर पंडित के प्रतिष्ठासारोद्धार की रचना विक्रम संवत् १२८५ में आश्विन पूर्णिमा को परमार नरेश देवपाल के राज्य में नलकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय में सम्पूर्ण हुयी थी। ग्रन्थ की प्रशस्ति में[२] उल्लेख किया गया है कि प्राचीन जिन प्रतिष्ठा ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन कर और ऐन्द्र (सम्भवतः इन्द्रनन्दि के) व्यवहार

---

१. श्लोक ९२३-९२६
२. श्लोक १८-२१

का अवलोकन कर आम्नाय—विच्छेदरूपी तम को छेदने के लिये युगानुरूप ग्रन्थ की रचना की गयी। आशाधर जी ने वसुनन्दि के पक्षधर विद्वानों के विपरीत मत का भी उल्लेख किया है।[१] आशाधर के प्रतिष्ठासारोद्धार का प्रचार केल्हण नामक प्रतिष्ठाचार्य ने अनेक प्रतिष्ठाओं में पढ़कर किया था।

नेमिचन्द्र का प्रतिष्ठातिलक भी बहुप्रचारित ग्रन्थ है। उसमें इन्द्रनन्दि की रचना का उल्लेख है। नेमिचन्द्र जन्मना ब्राह्मण थे। प्रतिष्ठातिलक की पुष्पिका में उन्होंने लिखा है कि भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित ब्राह्मण वंश में से कुछ विवेकियों ने जैन धर्म को नहीं छोड़ा। उस वंश में भट्टारक अकलंक, इन्द्रनन्दि मुनि, अनंतवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसिंह, वादिराज, हस्तिमल्ल (गृहाश्रमी), परावादिमल्ल मुनि हुये। उन्हीं के अन्वय में लोकपाल नामक विद्वान द्विज हुआ जो गृहस्थाचार्य था। चोल राजा उसकी पूजा करते थे। लोकपाल राजा के साथ कर्णाटक में प्रतिदेश पहुंचा। वहां उसकी वंश परम्परा में समयनाथ, कवि राजमल्ल, चिंतामणि, अनंतवीर्य, संगीतज्ञ पायनाथ, आयुर्वेदज्ञ पार्श्वनाथ और षट्कर्मज्ञाता ब्रह्मदेव हुये। ब्रह्मदेव का पुत्र देवेन्द्र संहिता शास्त्र का ज्ञाता था। उसके आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप ये पुत्र थे। इन्हीं नेमिचन्द्र के द्वारा प्रतिष्ठातिलक की रचना की गयी।

नेमिचन्द्र की माता का नाम आदिदेविका बताया गया है। नाना विजयपार्य थे और नानी का नाम श्रीमती था। नेमिचन्द्र के तीन मामा थे, चंदपार्य, ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ। उनके ज्येष्ठ भ्राता आदिनाथ के त्रैलोक्यनाथ जिनचंद्र आदि, स्वयं नेमिचन्द्र के कल्याणनाथ और धर्मशेखर तथा कनिष्ठ विजय के समन्तभद्र नामक पुत्र हुये।

प्रतिष्ठातिलक की प्रशस्ति में नेमिचन्द्र ने विजयकीर्ति नामक आचार्य का स्मरण किया है, पर किस प्रसंग में यह यहां स्पष्ट नहीं है। अभयचन्द्र नामक महोपाध्याय से नेमिचन्द्र ने तर्क, व्याकरण और आगम आदि की शिक्षा प्राप्त की थी एवं सत्यशासनपरीक्षाप्रकरण तथा अन्य ग्रन्थों की रचना की थी। प्रतिष्ठातिलक की प्रशस्ति में बताया गया है कि नेमिचन्द्र को राजा से पालकी, छत्र आदि वैभव प्राप्त हुये थे। उसी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उनका परिवार समृद्ध था। नेमिचन्द्र ने जैन मंदिर, मंडप, वीथिका आदि का निर्माण कराया था एवं पार्श्वनाथ मंदिर में गीत, वाद्य, नृत्य आदि का प्रबन्ध किया था। नेमिचन्द्र स्थिरकदम्ब नगर में निवास करते थे। पुत्रों और बन्धुओं की प्रार्थना पर उन्होंने प्रतिष्ठातिलक की रचना की थी।

---

१. प्रतिष्ठासारोद्धार, १, १७५

हस्तिमल्ल के प्रतिष्ठापाठ का उल्लेख अय्यपार्य ने किया है। किन्तु उस ग्रन्थ की प्रमाणित प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। आरा के जैन सिद्धान्त भवन में सुरक्षित प्रतिष्ठापाठ नामक हस्तलिखित ग्रन्थ के कर्ता सम्भवत: हस्तिमल्ल हो सकते हैं ? अय्यपार्य का प्रतिष्ठाग्रन्थ जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय के नाम से ज्ञात है। वे हस्तिमल्ल के अन्वय में हुये थे और उनका गोत्र काश्यप था। अय्यप के पिता का नाम करुणाकर और माता का नाम अर्कमाम्बा था। करुणाकर गुणवीरसूरि के शिष्य पुष्पसेन के शिष्य थे। अय्यप के गुरु धरसेन आचार्य थे। अय्यप के जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय में ३५६० श्लोक हैं। वह रुद्रकुमार के राज्य में एकशिलानगरी में शक संवत् १३४१ में माघ सुदी १० रविवार को सम्पूर्ण हुआ था।[१] अय्यपार्य ने स्वयं सूचित किया कि उन्होंने वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्तिमल्ल के ग्रन्थों से सार लेकर पुष्पसेन गुरु के उपदेश से ग्रन्थ की रचना की है।

वादी कुमुदचन्द्र के प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण या जिनसंहिता की प्रतियाँ कई स्थानों में उपलब्ध है। मद्रास ओरिएन्टल लाइब्रेरी में सुरक्षित प्रति की उत्थानिका और पुष्पिका से ज्ञात होता है कि कुमुदचन्द्र माघनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे जिनका स्वयं एक प्रतिष्ठाकल्प उपलब्ध है। भट्टाकलंक के प्रतिष्ठाकल्प ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठातिलक, भट्टारक राजकीर्ति के प्रतिष्ठादर्श पंडिताचार्य नरेन्द्रसेन के प्रतिष्ठादीपक, पण्डित परमानन्द की सिंहासनप्रतिष्ठा आदि रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियां आरा, जयपुर तथा अन्य स्थानों के शास्त्र भण्डारों में अद्यावधि सुरक्षित हैं। ये सभी दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ हैं।

श्वेताम्बर परम्परा के सकलचन्द्र उपाध्याय का प्रतिष्ठापाठ गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है। उसमें हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्र, श्यामाचार्य गुणरत्नाकरसूरि और जगच्चंद्र सूरीश्वर के प्रतिष्ठाकल्पों का उल्लेख किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा के ही आचारदिनकर में प्रतिष्ठाविधि का बड़े विस्तार से वर्णन है। ग्रन्थकर्त्ता वर्धमान सूरि ने दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों शाखाओं के शाखाचार का विचार कर आवश्यक में उक्त आचार का ख्यापन किया है। उन्होंने चन्द्रसूरि का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उनकी लघुतर प्रतिष्ठाविधि को आचार दिनकर में विस्तार से कहा है। वर्धमानसूरि ने आर्य-

---

१. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, प्रथम भाग, पृष्ठ ११२, दौर्बली शास्त्री श्रवणबेल्गुल की प्रति से उद्धृत अंश।

नन्दि, क्षपक चन्दननन्दि, इन्द्रनन्दि और वज्रस्वामी के प्रतिष्ठाकल्पों का अध्ययन किया था। आचार दिनकर की रचना विक्रम संवत् १४६८ में, कार्तिकी पूर्णिमा को अनन्तपाल के राज्य में जालंधरभूषण नन्दवन नामक पुर में पूर्ण हुई थी।[१]

श्वेताम्बर शाखा का निर्वाणकलिका नामक ग्रन्थ जैन प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। इसका प्रतिमालक्षण स्पष्ट और सुबोध है। ग्रन्थ पादलिप्तसूरिकृत कहा जाता है किन्तु वे पश्चात्कालीन आचार्य थे। निर्वाणकलिका के अतिरिक्त नेमिचन्द्र के प्रवचनसारोद्धार और जिनदत्त सूरि के विवेकविलास में भी जैन प्रतिमाशास्त्रीय विवरण मिलते हैं।

दिगम्बर शाखा के बोधपाहुड, भावसंग्रह (देवसेन) यशस्तिलकचम्पू, प्रवचनसार, धर्मरत्नाकर, आदि ग्रन्थों में जिन पूजा का निर्देश मिलता है। सातवीं शताब्दी ईस्वी में जटासिंहनन्दी द्वारा रचित पौराणिक काव्य वरांग-चरित के २२-२३ वें सर्ग में जिनपूजा और अभिषेक का वर्णन है किन्तु उसमें दिक्पालादिक के आवाहन का नामोल्लेख भी नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि जैन पूजा-विधान में दिक्पालादिक को पश्चातकाल में १०वीं-११वीं शताब्दी के लगभग-महत्त्व दिया गया। सोमदेवसूरि और आशाधर के ग्रन्थों में दिक्पालादिक को बलि प्रदान करने का विधान है। जान पड़ता है कि सोमदेव के समय में दक्षिण भारतीय जैनों में शासन देवताओं की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इसी कारण, सोमदेव को अपने उपासकाध्ययन के ध्यानप्रकरण में स्पष्ट उल्लेख करना पड़ा कि तीनों लोकों के दृष्टा जिनेन्द्रदेव और व्यन्तरादिक देवताओं को जो पूजाविधानों में समान रूप से देखता है, वह नरक में जाता है।[२] सोमदेव सूरि ने स्वीकार किया है कि परमागम में शासन की रक्षा के लिये शासन देवताओं की कल्पना की गयी है। अतः सम्यग्दृष्टि उन्हें पूजा का अंश देकर उनका केवल सम्मान करते हैं।

जैन प्रतिमाशास्त्र के अध्ययन के लिये हरिभद्रसूरि कृत पञ्चवास्तुप्रकरण और ठक्कर फेरु रचित वास्तुसारप्रकरण विशेष उपयोगी ग्रन्थ है। जिनप्रभसूरि के विविधतीर्थकल्प से भी जिनमन्दिरों और जिनबिम्बों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

अनेक जैनेतर ग्रन्थों में जैन प्रतिमाशास्त्रीय ज्ञान सन्निहित है। गुप्त कालीन मानसार के ५५ वें अध्याय में जैन लक्षण विधान है। वराह मिहिर

---

१. ग्रन्थप्रशस्ति, पन्ना १५०।

२. श्लोक ६९७-६९९।

की वृहत्संहिता में जैन प्रतिमाओं के लक्षण बताये गये हैं। अभिलषितार्थ चिन्तामणि, अपराजितपृच्छा, राजवल्लभ, दीपार्णव, देवतामूर्ति प्रकरण और रूपमण्डन में भी तीर्थंकरों और शासन देवताओं की प्रतिमाओं के लक्षण बताये गये हैं।

आधुनिक काल में जेम्स बर्जेस, देवदत्त भण्डारकर, बी० भट्टाचार्य, टी० एन० रामचन्द्रन, डाक्टर सांकलिया, डाक्टर उमाकांत परमानन्द शाह बाबू छोटेलाल जैन प्रभृति विद्वानों ने जैन प्रतिमा शास्त्र विषयक अनुसन्धानात्मक प्रबन्ध प्रकाशित किये हैं। डाक्टर द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, आर० एस० गुप्त तथा अन्य विद्वानों ने भी अपने प्रतिमा शास्त्रीय ग्रन्थों में जैन प्रतिमा शास्त्र विषयक जानकारी सम्मिलित की है। ये सभी जैन प्रतिमा विज्ञान के आधारभूत हैं।●

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद

की पुण्य स्मृति में

—मीरा बैद

८३-बी, विवेकानन्द रोड,

कलकत्ता-७००००६

फोन : २४१-०७१९

चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

(डॉ० शिवप्रसाद सिंह)

मध्ययुगीन श्वेताम्बर गच्छों में चैत्रगच्छ भी एक था। चैत्रपुर नामक स्थान से इस गच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है।[१] इस गच्छ के कई नाम मिलते हैं, यथा चित्रवालगच्छ चैत्रवालगच्छ, चित्रपल्लीयगच्छ, चित्रगच्छ आदि। धनेश्वरसूरि इस गच्छ के आदिम आचार्य थे। इनके पट्टधर भुवनचन्द्रसूरि हुए जिनके प्रशिष्य और देवभद्रसूरि के शिष्य जगच्चन्द्रसूरि से वि०सं० १२८५/ई. सन् १२२९ में तपागच्छ का प्रादुर्भाव हुआ।[२] देवभद्रसूरि के अन्य शिष्यों से चैत्रगच्छ की अविच्छिन्न परम्परा जारी रही।

चैत्रगच्छ के इतिहास के अध्ययन के लिये साहित्यिक और अभिलेखीय दोनों प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हैं। साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत इस गच्छ से सम्बद्ध केवल तीन प्रशस्तियां मिलती हैं। इस गच्छ की कोई पट्टावली नहीं मिलती, किन्तु तपागच्छीय आचार्यों की प्राचीन कृतियों की प्रशस्तियों एवं इस गच्छ की विभिन्न पट्टावलियों में चैत्रगच्छ के प्रारम्भिक चार आचार्यों का उल्लेख मिलता है। अलबत्ता इस गच्छ के मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित अनेक जिन प्रतिमायें उपलब्ध हुई है। इन पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि ये वि० सं० १२६५/ ई० सन् १२०९ से वि० सं० १५९१/ ई० सन् १५३५ के मध्य प्रतिष्ठापित की गई थीं। अभिलेखीय और साहित्यिक साक्ष्यों द्वारा इस गच्छ की विभिन्न शाखाओं जैसे—भर्तृपुरीयशाखा, धारणपद्रीय (थारापद्रीय) शाखा, चतुर्दशीपक्ष शाखा, चन्द्रसामीय शाखा, शक्तषणपुराशाखा, कम्बोइया और अष्टापद शाखा, शार्दूलशाखा आदि का भी पता चलता है।

अध्ययन की सुविधा के लिये सर्वप्रथम साहित्यिक साक्ष्यों और तत्पश्चात् अभिलेखीय साक्ष्यों का विवरण प्रस्तुत है।

सम्यकत्वकौमुदी :

चैत्रगच्छीय आचार्य गुणाकरसूरि ने वि० सं १५०४/ ई० सन् १४४८ में उक्त ग्रन्थ की रचना की। इसकी प्रशस्ति[३] में यद्यपि उन्होंने अपनी गुरु-

परम्परा के किसी आचार्य का नामोल्लेख नहीं किया है, किन्तु चैत्रगच्छ से सम्बद्ध सबसे प्राचीन प्रशस्ति होने से यह महत्त्वपूर्ण है।

गुणाकरसूरि की दूसरी कृति है वि० सं० १५२४/ ई० सन् १४६८ में रचित **भक्तामरस्तवव्याख्या**। इसकी प्रशस्ति[४] से ज्ञात होता है कि चैत्रगच्छीय आचार्य धनेश्वरसूरि की मूल परम्परा में गुणाकर सूरि हुए, जिन्होंने उक्त कृति की रचना की। वि० सं० १५५४/ ई० सन् १४९८ में लिपिबद्ध की गयी **भक्तामरस्तवव्याख्या** की एक प्रति मुनि पुण्य विजयजी के संग्रह में उपलब्ध है, जिसकी दाताप्रशस्ति में चैत्रगच्छीय मुनि चारुचन्द्र का उल्लेख है।

दशवैकालिकसूत्र की वि० सं० १७६८/ई० सन् १७१२ में लिखी गयी एक प्रति की दाता प्रशस्ति[५] में चैत्रगच्छ की देवशाखा का उल्लेख है। यह प्रति उक्तशाखा के आचार्य रत्नदेवसूरि के पट्टधर सौभाग्यदेवसूरि की परम्परा में मुनि बेलजी के पठनार्थ लिखी गयी थी। चैत्रगच्छ से सम्बद्ध यही साहित्यिक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। जैसा कि पूर्व में कहा गया है तपागच्छ से सम्बद्ध प्राचीन प्रशस्तियों एवं पट्टावलियों में चैत्रगच्छ के प्राचीन आचार्यों का विवरण प्राप्त होता है,[६] जो इस प्रकार है :—

चैत्रगच्छीय

धनेश्वरसूरि
|
भुवनचन्द्रसूरि
|
देवभद्रसूरि
|
जगच्चन्द्रसूरि [वि० सं० १२८५/ ई० सन् १२२९ में **तपागच्छ** के प्रवर्तक]

चैत्रगच्छ से सम्बद्ध दो लेख चित्तौड़ से प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक लेख चैत्रगच्छ की मूलशाखा और दूसरी भर्तृपुरीयशाखा से सम्बद्ध है। त्रिपुटी महाराज[७] ने प्रथम लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

"·······कार्तिक सुदि १४ चैत्रगच्छे रोहणाचल चिंतामणि·········
सा मणिभद्र सा० नेमिभ्यां सह वंडाजितायाः सं० राजन श्रीभुवनचन्द्रसूरि शिष्यस्य विद्वत्तया सुहृत्तयाच रंजितं श्रीगुर्जरराज श्रीमेटपाट प्रभु प्रभृति क्षितिपतिमानितस्य श्री (३) × × × लघुपुत्र टेटासहितेन स्वपितुरामित्य प्रथमपुत्रस्य वर्मनसिंहस्य पूर्वप्रतिष्ठित श्रीसीमंधरस्वामी श्रीयुगमंधरस्वामी।"

इस लेख में चैत्रगच्छीय आचार्य भुवनचन्द्रसूरि के शिष्य का उल्लेख है, किन्तु उनका नाम नहीं दिया गया है। साहित्यिक साक्ष्यों में भुवनचन्द्रसूरि के शिष्य देवभद्रसूरि का उल्लेख मिलता है अतः यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि चित्तौड़ के उक्त लेख में वर्णित भुवनचन्द्रसूरि के शिष्य उक्त देवभद्रसूरि ही हो!

देवभद्रसूरि के शिष्य जगच्चन्द्रसूरि से वि० सं० १२८५/ई० सन १२२९ में तपागच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, अतः देवभद्रसूरि का समय उनसे लगभग ३० वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० १२५५ के आस-पास माना जा सकता है। प्रायः यही समय उक्त लेख का भी हो सकता है इस आधार पर उक्त लेख में उल्लिखित गुर्जरनरेश को भीम 'द्वितीय' (वि० सं० १२३४-१२७७/ई० सन् ११७८-१२२१) तथा मेदपाट (मेवाड़) के राजा को गुहिलवंशीय शासक सामन्तसिंह (वि० सं० १२२८-१२५८/ई० सन् ११७१-१२०२) अथवा उसके उत्तराधिकारी कुमारसिंह[८] से समीकृत किया जा सकता है।

चूँकि चैत्रगच्छ से सम्बद्ध कोई भी साक्ष्य वि० सं० १२६५/ई० सन् १२०९ के पूर्व का नहीं है, किन्तु अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर उक्त तिथिरहित लेख निश्चय ही वि० सं० १२६५ के पूर्व का सिद्ध होता है, अतः इसे चैत्रगच्छ का सबसे प्राचीन साक्ष्य माना जा सकता है।

चैत्रगच्छ से सम्बद्ध प्रतिमालेखों का विवरण इस प्रकार है:

क्रमांक	वि० सं०	तिथि, वार	आचार्य का नाम	प्रतिमा लेख/ स्तम्भ लेख	प्रतिष्ठास्थान	संदर्भग्रन्थ
१.	१२६५	तिथि विहीन	पद्मदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय (नाहरों में) बीकानेर	अगरचन्द नाहटा संपा०— **बीकानेर जैन लेख संग्रह** लेखांक १४८०
२.	१२७३	फाल्गुन वदि-२ रविवार	धर्मसिंहसूरि	गुरुमूर्ति पर उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ सादड़ी (राज०)	अरविन्द कुमार सिंह— चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर के तीन प्रतिमालेख" **पं० दलसुखभाईमालवणिया अभिनन्दनग्रन्थ** पृष्ठ १७२-७३
३.	१२८८	आषाढ़ सुदि-१० शुक्रवार	·······सूरि		चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिला० बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त— लेखांक १२६
४.	१३००	माघ वदि-२	हरिचन्द्रसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय थराद	दौलतसिंह लोढा— संपा० **श्रीप्रतिमालेखसंग्रह** लेखांक
५.	१३१२	वैशाख वदि-४	यशोदेवसूरि के पट्टधर देवेन्द्रसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिना., चिन्तामणि शेटी राधनपुर	मुनि विशाल विजय, संपा० **राधनपुरप्रतिमालेख संग्रह** लेखांक ३६

६.	१३१२	माघ वदि-५ बुधवार	देवेन्द्रसूरि के पट्टधर धर्मदेवसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा पूर्वोक्त— लेखांक १५३
७.	१३२०	फाल्गुन सुदि-१२	रविप्रभसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, (कोचरों में) बीकानेर	वही, लेखांक १६२०
८.	१३२१	चैत्र सुदि-३ शुक्रवार	शालिभद्रसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	मुनि जयन्तविजय, संपा०— **अर्बुद प्राचीन जैन लेख संग्रह** लेखांक ५२९
९.	१३२१	फाल्गुन सुदि ......?	आमदेवसूरि	शांतिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	बावन जिनालय, करेड़ा, मेवाड़	पूरनचन्द नाहर, संपा०— **जैन लेख संग्रह** भाग २, लेखांक १९२१
१०.	१३२६	चैत्र वदि-१२ शुक्रवार	शालिभद्रसूरि के शिष्य धर्मचंद्रसूरि	शांतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर, लाडोल	मुनि बुद्धिसागर, संपा०— **जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह** भाग १, लेखांक ४६२

११.	१३२६	चैत्रवादि १२ शुक्रवार	शालिभद्रसूरि के शिष्य धर्मचन्द्रसूरि	अजितनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर,	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति—भाग-१ लेखांक-४६३
१२.	१३२६	···वदि ३ बुधवार	पद्मप्रभसूरि	जिन-प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा पूर्वोक्ति लेखांक १६८
१३.	१३२७	फाल्गुन सुदि १२	अजितसिंहसूरि के संतानीय कनकप्रभसूरि	,,	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्ति—भाग-३, लेखांक २२२९
१४.	१३३१	तिथिविहीन	—	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा पूर्वोक्ति—लेखांक १७८
१५.	१३३२ (?)	वैशाख सुदि ११ रविवार	देवेन्द्रसूरि के संतानीय धर्मदेवसूरि	चतुर्विंशति पट्ट पर उत्कीर्ण लेख	,,	वही, लेखांक १८३

१६.	१३३३	आषाढ़ सुदि २	देवानन्दसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, शांतिनाथ पोल, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग-१, लेखांक १२९७
१७.	१३३३	माघ सुदि १	देवचन्द्रसूरि के पट्टधर अमरचन्द्रसूरि के शिष्य अजितदेवसूरि	स्तम्भ लेख	जैन मन्दिर, रत्नपुर, मारवाड़	नाहर, पूर्वोक्त— भाग-१, लेखांक ९३५
१८.	१३३३	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	भद्रेश्वर सूरि के शिष्य नरचन्द्रसूरि	जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पंचायती मन्दिर, जयपुर	विनयसागर, संपा० प्रतिष्ठालेखसंग्रह लेखांक ८६
१९.	१३३४	"	देवभद्रसूरि के संतानीय पं० सोमचन्द्र	कायोत्सर्ग जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	जैन मन्दिर, तिवरी, सिरोही	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक २०९०
२०.	१३३५	चैत्र वदि ५ रविवार	पद्मचन्द्रसूरि के पट्टधर शालिभद्रसूरि के शिष्य रविचन्द्रसूरि और धर्मचन्द्रसूरि	शालिभद्रसूरि की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पार्श्वनाथ-देरासर, लाडोल	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ४५६

२१.	१३३९	तिथि विहीन	धर्मदेवसूरि	नेमिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वीर जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्ति— भाग ३, लेखांक २४१६
२२.	१३४०	ज्येष्ठ सुदि १३ रविवार	देवप्रभसूरि के संतानीय अमर-भद्रसूरि के पट्टधर अजितदेवसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ का बड़ा पंचायती जैन मन्दिर जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्ति लेखांक ११३४
२३.	१३४...?	......५ रविवार	रत्नप्रभसूरि के पट्टधर पद्मप्रभसूरि	पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	नवखंडा पार्श्वनाथ जिनालय, भोंपरापाडो, खंभात	मुनि बुद्धिसागर—पूर्वोक्ति, भाग २, लेखांक ८७९
२४.	१३५३	फाल्गुन सुदि १ बुधवार	गुणचन्द्रसूरि	वासुपूज्य की धातु-प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	आचार्य विजयधर्मसूरि, संपा० प्राचीन लेख संग्रह लेखांक ५० एवं नाहर, पूर्वोक्ति, भाग २, लेखांक १०४१
२५.	१३५४	माघ वदि ५	धर्मदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, मणि चौक, खंभात	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति— भाग २, लेखाँक ९२६

२६.	१३५९(?)	वैशाख सुदि ६	रत्नसिंहसूरि		चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति— लेखांक २८१
२७.	१३६१	तिथि विहीन	वर्धमानसूरि के शिष्य जयसेन उपाध्याय	स्तम्भ लेख	लूणवसही, आबू	मुनि जयन्तविजय, पूर्वोक्ति— लेखांक ३८४
२८.	१३६९	,,	आमदेवसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति— लेखांक २४४
२९.	१३६९	फाल्गुन सुदि ९ सोमवार	अजितदेवसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	प्राचीन जैन मन्दिर, लाल बाग, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर, संपा०— **जैन धातु प्रतिमा लेख** लेखांक २३
३०.	१३७१	आषाढ़ सुदि ३ गुरुवार	श्री उद···?	महावीर की धातु-प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, भावरी ग्राम, सिरोही	मुनि जयन्तविजय, संपा०— **अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह**, लेखांक ५२४

क्रमशः

महाराजा श्रेणिक

श्रीमती राजकुमारी बेगानी

पूर्वानुवृत्ति

बाट एवं राजपथ अब उस नगर की शोभा को सतत समृद्ध करते रहते। सभी प्रकार की सुविधाओं को पाकर कुशाग्रपुर की प्रजा राजगृही में ही आकर बस गयी और वह राजगृह मगध की राजधानी बनकर पूरे भारत में ही नहीं विदेशों में भी प्रसिद्ध हो गया।

महाराजा प्रसेनजित सोचने लगे यदि मैं अपने मनोभावों को प्रकट करुँगा तो अन्य सभी राजकुमार श्रेणिक का अनिष्ट करने में जुट जाएँगे। अत: अन्य सभी राजकुमारों को विभिन्न प्रदेशों का अधिकारी बनाकर भेज दिया किन्तु श्रेणिक को कुछ भी नहीं दिया।

श्रेणिक इस महान् अपमान को सहन नहीं कर सके। वे निरन्तर यही सोचते रहते ऐसे अपमान से तो मृत्यु अच्छी। फिर सोचने लगे किन्तु नहीं आत्मघात पाप है कायरता है मुझे तो वीरों की भाँति अपने पुरुषार्थ से सब कुछ प्राप्त करना चाहिये। श्रेयस्कर तो यही होगा कि मैं घर छोड़कर विदेश चला जाऊँ और अपने भाग्य की परीक्षा करूँ। यही सोचकर अन्तत: कुमार एक दिन घर से चुपचाप निकल पड़े।

प्रात: होते ही महाराज प्रसेनजित को सूचना मिली कि कुमार श्रेणिक बिना किसी से कुछ कहे अकेले ही घर से निकल गये हैं। सुनते ही राजा निस्तब्ध होकर बेसुध से हो गए। उन्होंने चारों ओर घुड़-सवार दौड़ाए किन्तु कहीं भी कुमार का कुछ अता-पता नहीं लगा। राजा को लगा एक अमूल्य चिन्तामणि रत्न अचानक उनके हाथ से खिसक कर कहीं गिरकर खो गया। कभी मन-ही-मन सोचने लगे हाय, मैंने कुमार का भला करते बुरा कर डाला। मैं तो सोच रहा था कि कुमार जैसा कुशाग्र बुद्धि वाला अवश्य ही मेरे मनोभावों को समझ रहा होगा। किन्तु नहीं, मेरे बनावटी रूप को ही उसने यथार्थ समझ लिया। स्नेह को अपमान समझ लिया और चुपचाप निकल पड़ा। हाय ! देव अब मैं क्या करूँ !

इधर महारानी धारिणी भी पुत्र शोक और वियोग में रो रोकर पागल हो गयी थी। राजा उन्हें सांत्वना देने के लिये कहते—"प्रिय यह संसार असार

है। संसार में कोई किसी का नहीं है। मोहभ्रम में फँसकर सुख की आशा में निरन्तर दुख ही प्राप्त करते रहते हैं। धारिणी, क्या तुम केशी गणधर का उपदेश भूल गयी ? अति मोह से तो यह भव और परभव दोनों ही बिगड़ता है।

राजन, मैं मन को बहुत समझाती हूँ। किन्तु किसी भी प्रकार मुझे शांति नहीं मिल पा रही है। कभी सोचती हूं कहीं वह वैराग्य से भावित होकर साधु नहीं बन जाए ? यदि ऐसा ही हुआ तब तो वह महान् पूज्य आर्य केशी की ही भांति वन्दनीय हो जाएगा। गुरुवर केशी। इस बढ़ती तरुणाई में ही उनका त्यागमार्ग, उनकी विद्वता, उनका विलक्षण ज्ञान, वैराग्य सभी कुछ अद्भुत है। वे भी राजकुमार ही थे। पूर्ण वैभव में राजसुख में पले-चढ़े किन्तु संसार की असारता ने उनके हृदय को वैराग्य से भर दिया और दीक्षा ग्रहणकर अपने तपोतेज से हम सबके लिये वन्दनीय व पूज्यनीय बन गये हैं। तुम्हारे कथानुसार यदि कुमार ने इसी मार्ग को स्वीकार कर लिया है तब तो सोच लो उसने हमारे कुल के मुख को उज्जवल ही नहीं किया बल्कि अपना अनुसरण करने के लिये हमारा भी मार्ग प्रशस्त कर दिया। प्रिय, भगवान् पार्श्वनाथ का निरन्तर स्मरण करो। उनका तो नाम ही दुख भंजन है। अत: अब हमें मोह को कम कर धर्म ध्यान व पूजन अर्चन कर भक्तिभाव सहित गुरु महाराज का उपदेश सुनकर इस पुत्र वियोग के कष्ट को भूलने का प्रयास करना चाहिये। फिर मेरे गुप्तचर तो सर्वत्र ही उसकी खोज में है।

एक दिन राजा प्रसेनजित दरबार में मन्त्रियों और सामन्तों से घिरे विभिन्न प्रसंगों पर वार्तालाप कर रहे थे कि श्रेणिक की भी चर्चा छिड़ गयी। राजा ने अपने प्रमुख मन्त्री चन्द्रवर्मा से कहा—मन्त्रीवर, मुझे तो अब कुमार श्रेणिक के अभाव में अपने उत्तराधिकारी की ही चिन्ता व्यग्र किये हुए है।

मन्त्री ने कहा—'महाराज आप चिन्ता न करें मेरा मन तो कहता है अपूर्व मेधावी और अत्यन्त बलशाली कुमार श्रेणिक जहां भी हैं अपने भाग्य और पुरुषार्थ से सुखी ही होंगे और जब मगध को अन्य सम्राट की आवश्यकता होगी तो वे अवश्य ही प्रकट हो जाएँगे।

एक सामन्त बीच में ही बोल उठा—'आप नहीं जानते महामन्त्री परदेश में मनुष्य को कितने कष्ट सहने पड़ते हैं। कठिनाइयाँ तो वहाँ पग पग पर मौजूद रहती है।' मन्त्री ने उत्तर दिया—आपका कहना यथार्थ है। आप स्मरण रखें। कष्टों की आँच में तपकर ही मनुष्य खरा सुवर्ण बनता है। फिर पुण्यशाली तो सर्वत्र ही सफल होता है। किसी का भाग्योदय देश में होता है किसी का परदेश में। श्रीकृष्ण के पिता रूठ कर घर छोड़कर निकल गए थे किन्तु पुण्यबल से वे जहाँ भी गए उनके लिये लक्ष्मी और रमणियाँ तैयार ही

रहती थी। संसार में सर्वत्र भाग्य ही फलीभूत होता है विद्या और पुरुषार्थ नहीं जैसा कि समुद्र का मंथन करने पर विष्णु को लक्ष्मी प्राप्त हुयी और शिव को विष की।

यह सुनकर बुद्धिसागर नामक एक मंत्री ने कहा "आपका कथन यथार्थ है किन्तु फिर भी इसमें कुछ सुधार की आवश्यकता है—यद्यपि प्रमुख भाग्य ही होता है फिर भी पांच अन्य कारण भी उसके साथ होते हैं। चन्द्रवर्मा ने पूछा—'कौन से पांच कारण ?' बुद्धिसागर ने उत्तर दिया—'काल-स्वभाव नियति, पूर्वकृत कर्म और उद्योग इन पांच कारणों के मिलने पर ही कार्य की सिद्धि होती है। यह और बात है कि किसी की अधिकता होती है तो किसी की न्यूनता।'

तभी प्रतिहारी ने आकर सूचना दी—'महाराज कोई विदेशी सार्थवाह आपसे मिलने की अनुमति चाहता है।' राजा ने उत्तर दिया—'उन्हें सादर लिवा लाओ। थोड़ी देर में प्रतिहारी एक पुरुष को लेकर उपस्थित हुआ। उसने आते ही राजा को सविनय प्रणाम करते हुए उत्तमोत्तम वस्तुएँ भेंट की। गौर से देखते ही राजा उन्हें पहचान गये और बोल उठे—'आओ देवनन्दी सार्थवाह आओ कहो—सब कुछ कुशल क्षेम है तो।'

'हे महाराज, आपकी कृपा से सब कुछ स्वतिकर है। मैं जिस उद्देश्य से गया था उसे भी सिद्ध करके आया हूँ। आशा करता हूं समस्त राजपरिवार भी कुशलपूर्वक होगा।

यह सुनते ही राजा चिन्तित स्वर में बोले कहाँ कुशल है देवनन्दी। कुमार श्रेणिक जरा सी बात पर रूठकर घर छोड़कर चले गए हैं। उन्हें गए करीब दो वर्ष से अधिक हो गए। देवनन्दी तुमने सौभाग्य से विपुल सम्पत्ति प्राप्त की है और मैंने दुर्भाग्यवश कुमार जैसा चिन्तामणि रत्न खो दिया है।

चौंक पड़ा देवनन्दी सार्थवाह यह सुनकर उसके स्मृति पटल पर उभर आया वह दृश्य—जिस दिन उसने बेलातट पर कुमार को पहली बार देखा था और पूछा भी था कि मुझे लगता है कि मैंने आपको राजगृह में देखा है। तब उसने बड़ी चतुराई से मुझसे कहा था—राजगृह। कौन सा राजगृह ? मेरे तो शत्रु भी वहाँ नहीं रहते। उनके हावभाव से जो अजनबीपन टपक रहा था राजगृह के प्रति उसको देखते हुए मुझे भी विश्वास हो गया था। सोचा एक ही शक्लसूरत के भी कई लोग होते हैं। किन्तु आज मुझे दृढ़ विश्वास है कि वे कुमार श्रेणिक ही हैं।

उसी विश्वास के साथ उसने राजा से कहा—महाराज, आप चिन्तित न हों, मैंने कुमार श्रेणिक को धनवाह श्रेष्ठि के घर देखा है। उन्होंने उनकी

विलक्षण सौन्दर्य और शील युक्त कन्या नन्दा से विवाह किया है और ठाठबाट से घर जंवाई बन कर रह रहे हैं बड़े सम्मान के साथ क्योंकि उन्हीं की बदौलत उस श्रेष्ठी को खोयी हुई सम्पत्ति, राज्य सम्मान एवं नगर सेठ की पदवी पुनः प्राप्त हुयी है। और मुझे भी तेजन्तुरी उन्हीं की कृपा से मिली जिसकी बदौलत इस विपुल धन की प्राप्ति हुयी।

सुनकर राजा को जो प्रसन्नता हुयी उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके विशाल नेत्रों से अविरल आनन्दाश्रु बहने लगे—देह रोमांचित हो गयी और गद्‌गद् कण्ठ से बोल उठे—'हे शासन देवों यदि देवनन्दी सार्थवाह का कथन सत्य है और कुमार जीवित हैं तो उनको राज्यभार सौंपकर मैं आत्मकल्याण की साधना में तत्पर हो जाऊँगा।

मन्त्रियों की ओर देखकर राजा ने कहा 'किसी बुद्धिमान दूत को बेन्न तट भेजकर तुरन्त कुमार को बुलवाने का प्रबन्ध किया जाए।

गोपाल नाम से प्रसिद्ध कुमार श्रेणिक बेन्नातट नगर में धनवाह सेठ के घर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अपने बुद्धि कौशल से उन्होंने व्यापार वाणिज्य में आशातीत सफलता प्राप्त कर ली है किन्तु उद्यमी व्यक्ति कहीं एक स्थान पर वह भी परदेश में निश्चिन्त होकर कैसे बैठ सकता है। कुमार के मन में भी विचार आया—'नन्दा के प्रेम में निमग्न हो सब कुछ भूला मैं यहाँ बैठा हूँ। अब मुझे और आगे बढ़कर अपने भाग्य की परीक्षा करनी चाहिये। नन्दा भी अब गर्भवती है। दोहद के अनुसार अत्यन्त बुद्धिमान, मेधावी और पुण्यशाली पुत्र को वह जन्म देगी। पति के पश्चात् स्त्रियों को पुत्र का ही तो आधार होता है। और धन की भी उसे कहाँ कमी है अपने नगर सेठ पिता की वह इकलौती सन्तान है।

तभी एक मनुष्य ने आकर कुमार का ध्यान भंग किया। वह बोला—'कुमार गोपाल, विदेश से एक व्यक्ति आया है और वह आप से ही मिलना चाहता है। विदेश का नाम सुनते ही कुमार चौंक पड़े। बोले—'ठीक है उसे सादर मेरे पास लिवा लाओ।'

उसे देख कर तो कुमार और भी विस्मित हो गये। फिर भी अजनबी बनते हुए पूछने लगे—आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं?

उस युवक ने निश्चयात्मक स्वर में कहा—'युवराज श्रेणिक मैं आपसे मिलने राजगृह से आया हूँ। आप गोपाल नाम से प्रसिद्ध होकर यहाँ के लोगों को धोखे में रख सकते हैं किन्तु मुझे नहीं। युवराज, आपके माता पिता ने आपके लिये सन्देश भेजा है और मुझे आपको राजगृह ले जाने की आज्ञा मिली है।'

कुमार ने तत्काल पूछा—'इसका क्या प्रमाण है।' आगन्तुक ने उसी क्षण राजमुहर अंकित महाराज प्रसेनजित का पत्र कुमार के हाथों में दिया। कुमार लिफाफा खोलकर पढ़ने लगे—

प्रियवर कुमार श्रेणिक, स्थान राजगृह

शत शत शुभ आशीष।

मिठाई से भरे टोकरों का मुँह खोले बिना तुमने स्वयं भी खाया अपने भाइयों को भी खिलाया। इसी भाँति युक्ति पूर्वक मुँह बन्द किए घड़े से भी पानी पीया-पिलाया। साथ ही भाइयों द्वारा छोड़े पात्र की खीर कुत्तों को खिलाते हुए अपने पात्र की खीर खायी। ऐसा मेधावी, पराक्रमी पुरुष माता-पिता का घर छोड़ कर घर जँवाइ बन कर रहे क्या यह शोभाप्रद है? कुत्ता कहने मात्र से घर छोड़ देने वाले को घर जँवाई बनना कैसे उचित लगा?

मैंने सभा में तुम्हें जो वचन कहे थे उसे यदि तुम ठण्डे मस्तिष्क से और गहराई से विचार करते तो मेरा आशय समझ में आ जाता। अब मेरे कथन को विचार करके ही भोजन करना।

तुम्हारा शुभेच्छु पिता
प्रसेनजित

पत्र पढ़कर कुमार के हृदय में पितृभक्ति उमड़ पड़ी। नेत्र सजल हो गए—देह रोमांचित हो गयी। राजगृह से आया प्रधान देव शर्मा कुमार में होने वाले इस परिवर्तन को देख रहा था। उसने तुरन्त ही कहा—अपने अयोग्य निन्यानवे पुत्रों से पिता को सुख नहीं दुख ही मिल रहा है। कुल के यश को उज्ज्वल करने वाले आप जैसे सुपुत्र से उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ थी। मन में उन्होंने आपको ही अपना उत्तराधिकारी चुना। किन्तु उनके आशय को न समझने के कारण आपने तो घर ही छोड़ दिया। सोचिये जरा आप जैसे पुत्र के वियोग में उनकी क्या अवस्था हो रही है। अब तो आपका एक मात्र कर्त्तव्य है पिता को सन्तुष्ट करना।

कुमार ने कहा—प्रधान जी आपका कथन अक्षरशः सत्य है किन्तु मैं यहाँ से नहीं चल सकता। अभी तो आप मेरी कुशलता का समाचार उन्हें दे दीजिये और मेरा यह पत्र पिताजी को देकर मेरी ओर से क्षमा याचना कीजियेगा।

पत्र देकर कुमार ने प्रधान को स्वदेश की ओर विदा कर दिया। वह भी शीघ्रातिशीघ्र राजगृह पहुंचा। कुमार का पत्र और कुशल समाचार महाराजा प्रसेनजित और महारानी को सुनाया और कुमार का पत्र महाराजा के हाथों में दिया—उन्होंने तुरन्त पत्र खोल कर पढ़ना प्रारम्भ किया—

परमादरणीय पिताजी, स्थान बेन्नातट

चरण कमलों में सादर वन्दन। आपका कृपा पत्र पाकर जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। आगे के लिये भी आशा करता हूँ कि आप अपना पत्र भेजते हुए मुझे आनन्दित करते रहेंगे। स्वदेश में रह कर भी यदि अपयश मिलता हो तो उचित यह है कि उसे परदेश जाकर अपने भाग्य की परीक्षा करनी चाहिये। साधारण पुत्र ही—ताड़ना-तर्जना और अपमान सहकर पड़े रहते हैं। किन्तु स्वाभिमानी को भला यह कैसे रुचिकर हो सकता है। जहाँ स्वामी की कृपा दृष्टि प्राप्त होनी चाहिये वहाँ यदि उलाहना ओर भर्त्सना ही मिले तो उसे कोई ना कोई मार्ग अपनाना ही पड़ता है।

आपका आज्ञाकारी पुत्र
श्रेणिक

पत्र पढ़कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुत्र की सुख-शान्ति और उन्नति के समाचार पा कर राजा के आनन्द का पारावार ही नहीं रहा।

एक दिन राजा प्रसेनजित एक असाध्य रोग से ग्रसित हो गए। एक तो वृद्धावस्था दूसरे पुत्र का वियोग ऐसे में व्याधि दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। नाना प्रकार के उपचारों को करने के पश्चात् भी कोई लाभ नहीं हुआ तो उन्होंने विचार किया—'मुझे अपनी मौजूदगी में ही पुत्र श्रेणिक को बुलाकर राज मुकुट उसे सौंप देना चाहिये। ताकि मगध की प्रजा भी ससम्मान उसे बिना किसी विवाद के राजा स्वीकार ले।

अतः बेन्नातट की ओर श्रेणिक को लाने के लिये दूत को रवाना किया। पिता के व्याधि ग्रस्त होने का समाचार पाकर श्रेणिक आकुल-व्याकुल हो उठे और उन्होंने तुरन्त निर्णय ले लिया कि ऐसे समय में मेरा एक मात्र कर्त्तव्य है राजगृह जाकर पिता की सेवा में संलग्न हो जाना। यदि कुछ हो गया तो मैं अभागा पिता के दर्शन और सेवा दोनों से ही वंचित रह जाऊँगा। ऐसा विचार कर कुमार सेठ के पास पहुँचे और बोले—'सेठ साहब मेरे पिताजी असाध्य रोग से पीड़ित हैं—व्याधि दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। मुझे बहुत याद कर रहे हैं। मुझे बुलाने के लिये दूत भी भेजा है। अतः अब मेरा कर्त्तव्य है शीघ्र स्वदेश की ओर रवाना हो जाना मैं आपसे यही निवेदन करने आया हूँ कि मैं अब शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से प्रयाण करूँगा।'

सेठ के पास उन्हें रोकने का कोई उपाय भी नहीं था अतः इतना ही बोले—'आप अवश्य ही अपने पिताजी की सेवा में उपस्थित हो जाएँ। किन्तु मैं भी उनके दर्शन करना चाहता हूँ अतः मुझे भी साथ ले चलें।

कुमार ने कहा—'सेठ साहब, यह आप क्या कह रहे हैं। आपका इतना बड़ा व्यापार। उसे छोड़कर आप कैसे जा सकते हैं? आपको अपने व्यापार को ही सम्भालना चाहिये और वह भी उस स्थिति में जब कि मैं भी जा रहा हूँ।

सेठ बोले 'यह भी ठीक है—किन्तु नन्दा को आप अपने साथ अवश्य ले जाएँ नहीं तो वह आपके वियोग में रो-रोकर सूख जाएगी।' कुमार बोले—'ऐसी अवस्था में जबकि वह गर्भवती है मैं उसे दूर दराज की यात्रा पर कैसे ले जा सकता हूँ। उसे तो अत्यन्त कष्ट सहना ही होगा साथ ही भय है कहीं उसके उत्तम गर्भ को कुछ न हो जाय। अतः अभी तो मुझे अकेले ही जाने दें। फिर नन्दा तो स्वयं ही बुद्धिमान है ऐसी परिस्थिति में वह कदापि एक साथ चलने का आग्रह नहीं करेगी। अब सेठ को तो कोई उत्तर ही नहीं सूझा बोले—'ठीक है जाइए। भगवान् आपका पथ निर्विघ्न करे और यात्रा मंगलमय हो। किन्तु हमको तो न आपका पता-ठिकाना मालुम है न कुल वंश हम आपको अपनी खबर कैसे भेजेंगे। कुमार ने कहा आप निश्चिन्त रहें मैं नन्दा को अपना ठिकाना देकर जाऊँगा।

अब कुमार नन्दा की ओर चले। उन्हें देख कर वह उठने का प्रयास करने लगी—किन्तु कुमार ने उसे तुरन्त हाथ पकड़ कर बैठा दिया। कहने लगे इस समय नन्दा तुम्हें पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। अपने इस उत्तम दोहद से पूर्ण पुत्र की सार संभाल करना ही तो इस समय तुम्हारा पुनीत कर्त्तव्य है।

'नन्दा, आज अभी मैं तुम्हें एक दुखद समाचार सुनाने आया हूँ।' सुनते ही नन्दा का हृदय धक् से रह गया। तुरन्त बोली—'प्रियवर क्या है वह दुखद समाचार? यही कि मेरे पिताजी किसी असाध्य व्याधि से पीड़ित होकर रोग शैय्या पर हैं। उन्होंने मुझे बुला भेजा है। अतः अब मुझे शीघ्रातिशीघ्र उनकी सेवा में उपस्थित होना है। कहीं ऐसा न हो कि उनकी सेवा से ही वंचित रह जाऊँ।' 'नहीं-नहीं प्रियवर ऐसा न कहें—आपको तो वहाँ शीघ्र ही पहुंचना है। मैं भी आपके साथ चलूँ और पिताश्री के दर्शन करूँगी। कुमार तुरन्त बोल उठे—'तुम! ऐसी हालत में नहीं—ऐसा करना मूर्खता है। इस पूर्ण होने वाली गर्भावस्था में तो यात्रा एकदम निषिद्ध है तुम्हें तो अपने महान् सौभाग्यशाली पुत्र के लिये यहाँ ही रहना पड़ेगा।'

सुनते ही नन्दा को चक्कर आ गया और स्मरण हो आया कुमार का वह कथन कि—'नन्दा मैं ठहरा अपरिचित परदेशी, न जाने कब चल दूँ—ऐसी स्थिति में तुम मुझसे विवाह मत करो।'

नन्दा को दुखी देख कर कुमार ने प्रेम भरे नेत्रों की मधुर झाँक से उसे आप्लावित करते हुए कहा—'प्रिय मुझे तो यही डर है कि कहीं तुम मुझे ही नहीं भूल जाओ। कितना विलक्षण, कितना महान् था तुम्हारा दोहद। निश्चय ही तुम एक ऐसे सुन्दर और पुण्यशाली पुत्र को जन्म दोगी कि जिसे देखने के पश्चात् मैं तुम्हें याद रहूँगा ? किन्तु हाँ उसका नाम तो अभय कुमार ही रखना। एक श्रेष्ठ स्वप्न भी तो देखा था न तुमने ? भूल गया मैं तो क्या देखा था ? बेचारी नन्दा एक आँख से हँसती एक आँख से रोती सी बोली देखा था—चार दांतों वाले उदरागम स्वेतवर्ण युक्त ऐरावत से विशाल गजराज को अपने मुख में प्रवेश करते ? उसका उत्तम फल भी तो आपने बतलाया था न ? हां बतलाया था हमारा वह महान् पुत्र हमारी सारी विपदाएँ दूर कर हमारा नाम अमर करेगा।

विहँस पड़ी नन्दा। आखिर कुमार नन्दा को समझा कर किसी प्रकार शान्त कर एक शुभ मुहूर्त्त में वेन्नातट से निकल पड़े।

किन्तु जाने के पूर्व नन्दा के प्रबल आग्रह पर कि आप अपना ठिकाना देते जाएँ एक कुशल कारीगर को बुलाकर एक शिलाखण्ड पर अपना पता उत्कीर्ण करवाया जिससे कि वह दीर्घकाल तक न मिट सके। लिखवाया—

गोपालका : पाण्डुर कुद्यवंतो वयंपुरं राजगृहे वसाम:। अर्थात् जो पृथ्वी का पालन करने वाले और उज्ज्वल वर्ण वाली मनोहर दीवारों से युक्त भवन में रहने वाले हम राजगृह निवासी हैं।

मंत्र के समान शिलाखण्ड पर इस श्लोक को अंकित करवा कर नन्दा को सौंप दिया और धरोहर की भांति सुरक्षित रूप में रखने को कहा।

बुद्धिमान कुमार जानते थे कि अपने निन्यानवें भाइयों की उपस्थिति में मुझे साधारण रूप से राजगृह में प्रवेश नहीं करना चाहिये। मुझे तो वहाँ अपूर्व ठाठ-बाट एवं विपुल वाहिनी लेकर ही जाना चाहिये। अपनी विपुल सम्पत्ति और शौर्य का परिचय देते हुए।

अत: कुमार ने नगर के बाहर एक विशाल सेना एकत्रित की। योग्य व्यक्तियों को योग्य पदों पर नियुक्त किया। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने को निरन्तर उत्सुक ऐसे सुभटों, योद्धाओं को भी उचित पद, उचित वेतन और सम्मान देकर सेना को सुरक्षित बनाया जब सारी तैयारी हो गयी तो स्वदेश की ओर अग्रसर होते हुए चल पड़े।

अब कुमार एक अरण्य से दूसरे अरण्य की ओर बढ़ते हुए एक महावन में पहुंच गये वहाँ से आगे बढ़े तो भीलों की पल्ली दिखाई दी। दो भील कमर में लंगोटी पहने—काले-कलूटे भद्दी शक्ल के हाथों में धनुष बाण लिए उड़ती

हुई धूल को देखकर ठहर गए। उन्हें लगा अवश्य ही कोई राजा अपनी सेना लेकर हमारे देश पर आक्रमण करना चाहता है। अतः दौड़ गए अपने राजा को सूचना देने। वे इतने घबरा गए थे उस विपुल सैन्य को देखकर कि अपने राजा के सम्मुख पहुंचकर भी काफी देरतक हांफते रहे। जब सम्भले तो बोले—'राजन अशुभ समाचार है। कोई राजा अपनी विशाल सेना लेकर हमारे देश पर आक्रमण करने आ रहा है। हम लोगों ने सब कुछ पेड़ पर चढ़ कर भली भाँति देखा है।

यह सुनते ही भीलराज तमतमा उठा और बोला— 'कौन है वह गीदड़ जिसने शेर की मांद में घुसने की कोशिश की है। उसने तुरन्त रणभेरी बजवाने का आदेश दिया। रणभेरी सुनते ही सभी अपने-अपने तीर-कमान, भाले, बरछी, तलवारों को लेकर घर से निकल पड़े। क्रमशः

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

संकलन

पहले कचरा निकालो :

उर्वर धरती में बोए हुए बीज अंकुरित होते हैं। उर्वर धरती को और अधिक उपजाऊ बनाने के लिए उसमें खाद दी जाती है। धर्म के बीज बोने के लिए जीवन की धरती को भी उर्वरक की अपेक्षा रहती है। आर्जव एक ऐसा उर्वरक है, जो धर्म की पौध को बढ़ाने में सहयोगी है। जब तक व्यक्ति में कषाय की प्रबलता होगी, क्रोध, अहंकार, माया और लोभ का उत्ताप अधिक रहेगा, धर्म का आचरण नहीं हो पाएगा। आचरण तो आगे की बात है, धर्म का उपदेश भी तभी ग्रहण हो सकता है, जब आदमी का मन खाली हो।

संन्यासी के पास एक युवक आकर बोला—'बाबा! उपदेश दो।' संन्यासी ने कहा—'आज नहीं कल आना'। युवक उपदेश सुनने के लिए बहुत उत्सुक था। वह बोला—'बाबा! उपदेश के लिए कोई समय होता है क्या? मैं आशा लेकर आया हूं।' संन्यासी ने कहा—'मैं उपदेश देने से पहले तुम्हारे घर आकर भिक्षा ग्रहण करूंगा।' युवक खुश होकर चला गया। घर पहुंचकर उसने अपनी माँ से कहा—"माँ! कल एक बाबाजी यहाँ भिक्षा लेने आयेंगे। उनके लिए अच्छा भोजन बनाना है।"

युवक की माँ ने दूध को गाढ़ा कर खीर बनाई, संन्यासी निर्धारित समय पर युवक के घर पहुंचा। उसने श्रद्धा और सम्मान के साथ संन्यासी को खीर देने की इच्छा प्रकट की। संन्यासी ने अपना पात्र निकाला। उसमें कचरा पड़ा था। युवक का हाथ रुक गया। वह बोला—'बाबाजी! पहले कचरा साफ करो। अन्यथा खीर खाने जैसी नहीं रहेगी। संन्यासी ने कहा—'वत्स! पहले अपने दिमाग का कचरा बाहर निकाल। अन्यथा उपदेश कोई काम नहीं करेगा। युवक को प्रतिबोध मिल गया।

—गणाधिपति तुलसी

साभार प्रेक्षाध्यान, मई-'९६

जैन पत्र पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

।। जैन जगत ।। अप्रेल १९९६

महावीर वाणी, भगवान् महावीर के उपदेश वर्तमान में अधिक उपयोगी हैं—आचार्य श्री विद्यानन्द जी, शांति का मसीहा महावीर—जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ', भगवान महावीर की अहिंसा का अर्थ—श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद', आदर्श जयन्ती—श्री सरस्वती कुमार 'दीपक', सन्मति पथ पर पग कब धारे—श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन, सामायिक एवं ध्यान साधना—श्रीमती मंजुला भंसाली पाँच मुक्तक—श्री दिलीप धींग, महावीर का भेद विज्ञान : समस्याओं का समाधान—मुनि श्री धर्मचन्द 'पीयूष', तीर्थंकर महावीर की क्रांति—कीर्ति—डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, महावीर—श्री हरखचन्द साह

।। अमर भारती ।। अप्रेल १९९६

उद्‌बोधन—उपाध्याय अमर मुनि, क्या खो गया है इनका ?—आचार्य श्री चन्दना जी, श्री अमर भारती चौथे दशक की ओर—भद्रेश कुमार जैन, आदि गुरु तीर्थंकर ऋषभदेव—उपाध्याय अमर मुनि, अक्षय तृतीया : एक अनुचिन्तन श्री अमोलक ऋषिजी, श्री ऋषभ जिनेश्वर-उपाध्याय अमर मुनि, सेवा गंगोत्री में खिलते नेत्र कमल—बी० के० जैन, युवाओं के प्रेरणा-स्रोत : कुणाल जैन—मधुश्री काबरा अनुकरणीय आचरण स्मृति सहकार : शतावधान के पार

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

Proprietor : **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001

Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

कर्म के बीज राग और द्वेष हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह कर्म के जन्म और मरण का मूल है और जन्म एवं मरण ही दुःख है।

Creative Private Limited

12, DARGAH ROAD
Post Box 16127
CALCUTTA-700 017

Phone : 40-3758, 40-1690, 40-0514
Cable : CREAIN, Calcutta
Telex : 21-4774 CREAIN
FASCIMILE : (91) 33-40-0098

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874   Resi. : 244-3810

WB/NC-330
Vol. XX No. 1 **TITTHAYARA** **May 1996**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77